DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal (2021) • Volume 17 • 29--35

Research Article

श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शांति शिक्षा

बद्री नारायण मिश्र[1]

[1] शोध अध्येता, शिक्षाशास्त्र प्रशिक्षण, शिक्षा संकाय, छ0 शा0 जी म0 वि0 वि0, कानपुर

*Corresponding author email: mishra.bnarayan@gmail.com

https://doi.org/10.36018/dsiij.v17i.147

सारांश. श्रीमद्भगवद्गीता औपनिष्दिक दर्शन का विश्वसमाघृत प्रतिनिधि ग्रन्थ है, जिसके उपदेश प्राणिमात्र के कल्याण के लिये हैं। इन उपनिषदों का अनुगमन करके हम समसामयिक शैक्षिक समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। गीता के अनुसार आंतरिक शांति, प्रेम व अपनत्व जैसे पवित्र भाव वास्तविक ज्ञान की कसौटी हैं। इसमें अशांति व दुःख के कारण एवं अन्तःकरण की प्रसन्नता व शांति के उपाय का पूर्णतः व्यावहारिक विवेचन किया गया है। कामना एवं स्वार्थसिद्धि के लिये किये गये कर्म सभी प्रकार की अशांति एवं संघर्ष के कारण हैं। गीता कामनाओं एवं कर्मों के नियमन का मार्ग बताती है, जिससे वैयक्तिक एवं वैश्विकशांति व सौहार्द का विकास होगा। वैयक्तिक शांति हेतु गीता ने 'निष्कामकर्म' एवं 'स्थितप्रज्ञ ' अवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया है। निष्काम कर्म का अर्थ लोककल्याण की भावना से निःस्वार्थ कर्म करना है। इस प्रकार का कुशल कर्म पूर्ण समायोजित, स्थिर व शांत चित्त वाला 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति ही कर सकता है। इन आदर्शों से ही वैश्विकशांति व सौहार्द का मार्ग प्रशस्त होता है। गीता में वैश्विक शांति हेतु वाँछित वैयक्तिक गुणों को दैवीय संपदा तथा अशांति जनक अवगुणों को आसुरी संपदा कहा गया है। शिक्षा का उद्देश्य 'दैवीय संपदा' का विकास तथा 'आसुरी सम्पदा' का विनाश है। आधुनिक शिक्षा में शांति व मूल्य संकट निवारण हेतु हमें भगवद्गीता के आलोक में अपनी शिक्षा व्यवस्था का परिमार्जन एवं उन्नयन करना होगा।

कूटशब्द. शांति, निष्काम कर्मयोग, स्थितप्रज्ञ, दैवीय संपदा, आसुरी संपदा।

प्रस्तावना

आज मानव समाज के पास अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त ज्ञान व कौशलों का भण्डार तो है ही, वह नित नये वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकीय आविष्कार अपने सुख विस्तार के लिये कर रहा है। आज का मनुष्य पहले से अधिक ज्ञानी, कुशल एवं संसाधन युक्त है, इसके बावजूद वह अपने पूर्वजों से अधिक अशांत, क्लांत व भ्रान्त है। मानव की इसी अशांति का विस्तार सामाजिक विद्वेश, संघर्ष, असहिष्णुता व हिंसा में परिलक्षित होता है। मानव समाज की समस्त भौतिक उपलब्धियों का श्रेय यदि हम आधुनिक शिक्षा को दें तो निश्चय ही उसकी असफलता, अशांति, असहिष्णुता व संघर्ष का उत्तरदायित्व भी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को ही लेना होगा क्योंकि अशिक्षित मनुष्य इतना अशांत, निर्मम, संवेदनहीन, हिंसक व क्रूर नहीं था जितना आज का तथाकथित शिक्षित बुद्धिजीवी मनुष्य। यह ध्रुव सत्य है कि ज्ञान एवं कौशल बढ़ने के अनुपात में ही वैयक्तिक एवं सामाजिक अशांति, विवाद एवं संघर्ष भी बढ़ रहे

OPEN ACCESS • ISSN • 2279-0578 (PRINT) • 2582-4589 (ONLINE)
Copyright (c) 2021 Badri Narayan Mishra. • Licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License

हैं । इसका कारण है कि आज की शिक्षा व्यक्ति व समाज का एकांगी विकास कर रही है । वास्तव मे शिक्षा जीविका से सम्बन्धित नहीं अपितु जीवन से सम्बन्धित है । यह जीविका एवं उसके साधनो की सम्पन्नता से सम्बन्धित नही है, बल्कि जीवन की गुणवत्ता तथा दिशा से सम्बन्धित है । प्रेम, मैत्री, अपनत्व, परमार्थ, त्याग, अनुशासन आदि अनेक दिव्य गुण जिनसे आत्मिक शांति व संतुलन प्राप्त होता है, वे सब मन के संस्कारों व विचारों के ही प्रतिफल हैं । आज की शिक्षा व्यक्ति को अपने मन व विचारों का नियमन सिखाने में कम से कम उस अनुपात तक असमर्थ है, जिस अनुपात में इन दिव्य गुणों के विरोधी अवगुण मनुष्य व समाज को प्रभावित किये हुये हैं । श्रीमद्भगवद्गीता मानव मन एवं विचारों के संतुलन एवं प्रबन्धन को सिखाने वाला कालातीत व सार्वभौमिक शास्त्र है । गीता के संदेश प्राणिमात्र के लिये हैं, किसी धर्म विशेष के मानने वालों के लिये नहीं । श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय आर्ष विद्या का सार है । इसकी महत्ता बताते हुये गीता कहा गया है –

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

आशय यह है कि भगवद्गीता सर्वऔपनिषदिक ज्ञान रूपी गाय का दुग्धामृत है जो हमें जर्जरता, जीर्णता व प्रत्येक प्रकार की हीनता व दीनता से मुक्त करती है । श्रीकृष्ण ने विषादग्रस्त अर्जुन की उन सभी सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक व भौतिक दुश्चिंताओं एवं भ्रमों का निवारण किया है जो केवल अर्जुन ही नहीं अपितु प्रत्येक देश, काल में मानव के समक्ष उपस्थित होती हैं । वास्तव में अर्जुन के संशय, भय व भ्रम प्रत्येक काल के मानवीय संशय, भय व भ्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं । मानव की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का मूल कारण व प्रकृति प्रत्येक देश काल में समान रहती हैं केवल परिदृश्य में परिवर्तन होता है (1-4) । भगद्गीता में श्रीकृष्ण ने आत्मिक व सामाजिक शांति के जो उपदेश दिये हैं वे शाश्वत हैं। डा0 सर्वेपल्लि राधाकृष्णन् (5) ने अपनी विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'भगवद्गीता' की भूमिका में लिखा है - ''प्रत्येक धर्म ग्रन्थ के दो पक्ष होते हैं, एक तो सामाजिक और नश्वर जो उस काल और देश के लोगों के विचारों से सम्बन्धित होता है, जिसमें वह धर्मग्रन्थ रचा गया होता है, और दूसरा शाश्वत और अनश्वर पक्ष जो सब देशों और कालों में लागू हो सकता है । बौद्धिक अभिव्यक्ति व मनोवैज्ञानिक भाषा काल की उपज है, जबकि शाश्वत सत्य सब कालों में जीवन में अपनाये जा सकते हैं और बौद्धिक दृष्टि की अपेक्षा एक उच्चतर दृष्टि द्वारा देखे जा सकते हैं''।

शांति : शिक्षा की कसौटी

शिक्षा मानव की भावनाओं का नियमन, विचारों का सृजन व तदनुरूप कर्मों को दिशा प्रदान करती है । मनुष्य अपने शैक्षिक संस्कारों के मार्गदर्शन में जो भी कर्म करता है उसका उद्देश्य शांति प्राप्त करना ही होता है । महान शिक्षाविद् मारिया माण्टेसरी ने कहा था - ''सारी शिक्षा शांति के लिये ही है।'' अर्थात शिक्षा शांति पाने का एक माध्यम है तथा शिक्षा का उद्देश्य शांति है । शिक्षा के द्वारा बौद्धिक क्षमताओं व कौशलों की वृद्धि होती है, इन योग्यताओं को अर्जित करने का उद्देश्य शांति व संतुष्टि ही है । शिक्षा को परिभाषित नही किया जा सकता इसीलिये शिक्षा के लक्षणों की ओर इंगित करते हुये भारतीय मनीषियों ने कहा है कि -'' विद्या वह है, जो मुक्त करे'' । मोक्ष अथवा मुक्ति भारतीय ज्ञान परम्परा का वरेण्य रहा है । आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं अपितु यदि लौकिक दृष्टि से भी शिक्षा के इस लाक्षणिक आशय पर विचार करें तो यह कहा जा सकता है कि जो विचार, संस्कार व कौशल हमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि अशक्तताओं से मुक्त करे तथा निष्कामता, क्षमा, त्याग, सरलता, प्रेम आदि दिव्य गुणों से ओतप्रोत कर दें, वही वास्तविक शिक्षा है । इसी वास्तविक शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के चित्त व सामाजिक परिदृष्य में शांति, समरसता, प्रेम, मैत्री तथा सद्भाव का विकास सम्भव है । ज्ञान व बुद्धि का विकास ही शिक्षा नहीं है अपितु शिक्षा वह है जो ज्ञान व बुद्धि के सदुपयोग का विवेक जागृत करे । डेनियल वेब्स्टर ने कहा है ''ज्ञान में वह सब कुछ समाहित नहीं है, जो शिक्षा का व्यापक अर्थ अपने में समाये हुये है । भावनायें

अनुशासित हों, मनोभाव संतुलित हों, शुद्ध और हितकारी लक्ष्यों को प्रोत्साहित किया जाय और किसी भी प्रकार की परिस्थिति में विशुद्ध नैतिकता कायम रखी जाए।'' श्रीमद्भगवदगीता में बताया गया है कि ज्ञान हमारे मन को पवित्र करता है क्योंकि हमारे मन तथा कर्म को दूषित करने वाले विचार निश्चय ही ज्ञान नहीं है, अपितु अज्ञान हैं। ज्ञान की महत्ता बताते हुये श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि - 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' (4/38) अर्थात इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है। भगवद्गीता के इस पवित्र घोष से यह आशय निकालता है कि मन को तथा हमारे कर्म को पवित्रता, शुचिता व शांति मार्ग पर ले जाने वाले विचारों व कौशलों को ही ज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है। आन्तरिक शांति एवं उससे उत्पन्न बाह्य जगत की समरसता, प्रेम, अपनत्व जैसे भाव वास्तविक ज्ञान की कसौटी हैं। ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य का चित्त स्थिर शांति को प्राप्त हो जाता है तथा ज्ञानमय समाज ही शांत समाज हो सकता है (1-5)।

अशांति के कारण

भगवद्गीता में अशांति के कारणों का पूर्णतया मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। गीता के अनुसार –

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (2/62/63)

अर्थात विषयों का ध्यान करने से उसमें आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से उसको पाने की कामना उत्पन्न होती है तथा कामनाओं की पूर्ति में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से सम्मोह (अत्यन्त मूढ़भाव) उत्पन्न हो जाता है, इस मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने पर बुद्धि अर्थात विवेक व ज्ञान की क्षमता का नाश हो जाता है, बुद्धि का नाश होने पर व्यक्ति अपनी स्थिति से गिर जाता है जिससे उसका पतन हो जाता है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शांतिरशान्तरस्य कुतः सुखम्॥ (2/66)

अर्थात् - न जीते हुये मन और इन्द्रियों वाले पुरूष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्य को शांति नहीं मिलती है और शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है? युक्त बुद्धि अथवा निश्चयात्मिका बुद्धि का आशय संशय रहित एवं नीर-क्षीर विवेक युक्ति बुद्धि से है। इस बुद्धि से युक्त होकर ही हम वास्तविक अहं (सोऽहं) तथा मिथ्या अहं (देहाभिमान) के भेद को समझ सकते हैं। चराचर जगत में आत्मीय व तात्विक एक्य को समझकर सम्पूर्ण सृष्टि से तादात्म स्थापित कर शांत हो सकते हैं तथा शांति के प्रसारक हो सकते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली युक्त बुद्धि (निश्चयात्मिका बुद्धि) का निर्माण करने में विफल है क्योंकि इसकी दृष्टि भौतिक तथा अयुक्त है। यह केवल जीविका से सम्बन्धित है, जीव से नहीं। इस श्लोक में 'भावना' शब्द भी मनन करने योग्य है। जो भावना प्राणिमात्र में सद्भावना, सामंजस्य एवं तादात्म का सृजन करे वही युक्त-युक्त, निश्चयात्मिका बुद्धि युक्त भावना है। विशुद्ध भाव का आशय है कि हम जगत तथा जगदीश के साथ अपने शाश्वत व पवित्र सम्बन्ध की अनुभूति करें। इस भावानुभूति के पश्चात हमारे अन्तःकरण के ईर्ष्या, द्वेष, द्वैत आदि का शमन हो जायेगा तथा हमें शांति की प्राप्ति होगी। शांति का यह व्यष्टि संस्कार हमारे निष्काम कर्म के माध्यम से समष्टि को शांति व समरसता से आप्लावित कर देगा। मानसिक अशांति का यह विश्लेषण निश्चय ही सार्वभौम है। अवाँछित वस्तुओं के प्रति आसक्ति एवं कामनाओं के पूर्ण न हो पाने के कारण हमारे मन में क्षोभ व क्रोध उत्पन्न होता है तथा हम अपनी स्वाभाविक शांति को खो देते हैं। व्यक्ति की यह आन्तरिक अशांति ही सामाजिक संघर्ष में परिलक्षित होती है। भगवद्गीता का मानना है कि कामना एवं स्वार्थ सिद्धि के लिये किये गये कर्म सभी प्रकार की अशांति एवं संघर्ष के कारण है (1-5)।

शांति के उपाय

श्रीमद्भगवद्गीता में केवल अशांति व दुख के कारण का ही विश्लेषण नहीं किया गया है, अपितु अन्तःकरण की प्रसन्नता एवं शांति के उपाय भी समझाये गये है।

उदाहरणार्थ –

रागद्वेशवियुक्तैस्तु विशयानिन्द्रियैश्चरन।
आत्मवष्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छिति॥ (2/64)
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो हयाशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते॥ (2/65)

जिसका अन्तःकरण उसके अधीन है, तथा इन्द्रियां राग-द्वेष से रहित हैं, वह इन्द्रियजयी व्यक्ति विषयों में विचरण करते हुये भी अनासक्ति के कारण अन्तः करण की प्रसन्नता को प्राप्त करता है। चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होने पर उनके सभी दुखों का नाश हो जाता है, और इस तरह प्रसन्नचित्त व्यक्ति की प्रज्ञा शीघ्र ब्रह्मात्म ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाती है। लेकिन यह शांति व प्रसन्नता अनायास नहीं प्राप्त होती। इसके लिये ज्ञान के प्रति श्रद्धा, इंद्रिय संयम तथा सतत तत्परता आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिच्छति॥ (4/39)

अर्थात् श्रद्धावान, इन्द्रिय संयमी तथा तत्पर व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करता। ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् वह तत्काल सदैव रहने वाली शांति को प्राप्त हो जाता है। इस विश्लेषण का सार है कि भगवद्गीता के अनुसार शांति की उपलब्धि ही ज्ञान की एक मात्र कसौटी है और इस ज्ञान को इंद्रियनिग्रह व संयम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। कामनाओं एवं कर्म को समाप्त नहीं किया जा सकता यह अमनोवैज्ञानिक तथा अयथार्थवादी उपागम है। भगवद्गीता ने कामनाओं एवं कर्मों के नियमन की बात की है ताकि हमारे कर्मों तथा कामनाओं को ऐसी वांछित दिशा मिल सके जिससे हमें शांति व ज्ञान की प्राप्ति हो सके। भगवद्गीता कर्त्तव्य कर्म को आसक्ति रहित होकर करने का उपदेश देती है। कर्त्तव्य कर्म ही स्वधर्म है जिसका पालन ही गीता में प्रशस्त है। प्रश्न यह है कि स्वधर्म क्या है? वास्तव में स्वधर्म ऐसी भावना से किया गया कर्म है जो जीव के वास्तविक स्वरूप का बोध कराये तथा आत्म कल्याण द्वारा जगत कल्याण का भी मार्ग प्रशस्त करे। यहीं जीव धर्म भी है। अपने प्रारब्ध तथा नियति के कारण हमें जो कर्म परिदृश्य मिला है, उसी को यदि हम विशुद्ध सेवा भाव से ममता व आसक्ति रहित होकर करें तो ऐसा कर्म आत्म कल्याण के साथ ही जगत कल्याण का संधान करने वालो का हितकारी होगा। हमारी ममता कर्मनिष्ठा में होनी चाहिये न कि कर्मफल में। वैश्विक अशांति व मूल्यहीनता का कारण यही है कि हमारी निष्ठा व ममता कर्मफल में है। परिणाम स्वरूप हममें तटस्थ भाव नहीं आ पाता जिससे हम परिणामों से सुखी अथवा दुखी होने लगते है एवं कामनाओं की पूर्ति न होने पर क्षोभ व द्वेषयुक्त हो जाते है। जिसका प्रतिफलन सामाजिक अशांति में होता है (1-5)।

वैयक्तिक शांति का मार्ग

भगवद्गीता का उपदेश है कि हम प्रत्येक कर्म करते हुए शांति को प्राप्त कर सकते हैं यदि हमारा कर्म निष्काम हो। निष्कामता का अर्थ विशुद्ध कामनाहीन होना नहीं है, अपितु 'कर्तव्य' भाव तथा 'सर्वभूत हित' भाव से कर्म करना है। यह आध्यात्मिका को व्यवहारिक धरातल पर मूर्त रूप देने वाला सद्ग्रन्थ है। इस भाव को स्पष्ट करते हुये स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है (6)- '' प्रत्येक कर्म के फल में भलाई और बुराई मिली रहती है। कोई भी अच्छा काम ऐसा नहीं होता जिसमें बुराई का कुछ न कुछ सम्पर्क न रहता हो। जैसे अग्नि धुएं से आवृत रहती है, उसी प्रकार कर्म में कोई न कोई दोष लगा ही रहता है। हमें ऐसे कार्यो में ही रत रहना चाहिये जिससे भलाई सबसे अधिक और बुराई सबसे कम हो। जो अपना क्षुद्र अहं भाव भूलकर कार्य करते है, उनपर इन दोषों का प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि वह संसार की भलाई के लिये कर्म करते है। निष्काम

और अनासक्त होकर कार्य करने से हमें परम आनन्द और मुक्ति की प्राप्ति होती है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कर्मयोग के इसी रहस्य की शिक्षा दी है।'' कर्म करने का उद्देश्य ही यह निर्धारित करता है कि कौन सा कर्म सकाम है तथा कौन सा कर्म निष्काम है। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति एवं उसमें मिले कर्तव्य को यदि हम केवल कर्तव्य भाव से करें तो निश्चय ही उस कर्म के परिणाम में हमारी स्वार्थ पूर्ण आसक्ति नहीं रहेगी। हमारी सारी दुश्चिंताओं, भ्रमों, विषाद व अशांति का कारण है कि हम अपने कर्म के उन परिणामों से आसक्त हो जाते हैं जो हमारे वश में नही हैं। निष्काम कर्म भाव से युक्त व्यक्ति चरम आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकता है। यदि इस संदर्भ में आध्यात्मिकता को बाहर रखा जाय तब भी यह तो निश्चित है कि इस मनोभाव वाला व्यक्ति पूर्ण मनोयोग से अपनी क्षमताओं का अधिकतम उपयोग अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कर सकता है। परिणामों में आसक्त व्यक्ति लौकिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता भी खो देता है तथा हीन ग्रन्थि, कुण्ठा व तनाव का शिकार हो जाता है। निष्काम कर्म योगी 'स्थित प्रज्ञ' अवस्था को प्राप्त कर लेता है। विनोवा का मानना है (7)- '' 'स्थित प्रज्ञ' गीता का आदर्श पुरुष विशेष है। यह शब्द भी गीता का खास शब्द है। गीता के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में वह नहीं मिलता है। स्थित प्रज्ञ की तरह गीता में आदर्श पुरुषों के और भी वर्णन हैं। कर्मयोगी, जीवनमुक्त, योगारूढ़, भगवद्भक्त, गुणातीत, ज्ञाननिष्ठ इत्यादि अनेक नामों से अनेक आदर्श भिन्न-भिन्न स्थानों पर आये है।..... ये स्थितप्रज्ञ से कोई भिन्न पुरुष है ऐसी बात नहीं, स्थितप्रज्ञ के ही वे अनेक पहलू है''। यदि हम आधुनिक संदर्भ में 'स्थितप्रज्ञ' का अर्थ ले तो इसका अर्थ है पूर्ण समायोजित, स्थिर व शांत मन वाला व्यक्तित्व, जो किसी भी परिस्थिति में अविचलित, आनन्दमय तथा शांत रहता है। स्थितप्रज्ञ पुरूष के लक्षण बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है-

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ (2/57)

जो पुरूष सब ओर से स्नेह रहित (मोह रहित) होकर शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त कर न तो प्रसन्न होता है और न ही द्वेष रखता है। उसकी बुद्धि स्थिर है। स्थितप्रज्ञ अवस्था गीता का व्यक्तिगत आदर्श है। इस प्रकार की 'स्थितप्रज्ञता' प्राप्त कर्मयोगी व्यक्तियों से एक दैवीयसंपदा युक्त शांत व समरस समाज का निर्माण करना गीता का चरम लक्ष्य है।

वैश्विकशांति का मार्ग

भगवद्गीता में जगद्गुरू श्री कृश्ण ने प्राणिमात्र की तात्विक एवं अध्यात्मिक एकता का रहस्योद्घाटन एवं प्रतिपादन करके वैष्विक शांति का मार्ग प्रशस्त किया है। इस तत्त्वज्ञान का बोध होने पर व्यक्ति सर्वत्र चराचर में समत्व एवं एकत्व की अनुभूति कर सकता है एवं निश्काम व निस्पृह भाव से अपने दैहिक व लौकिक कर्त्तव्यों का निर्वहन करने में सफल होता है। संसार में अषांति व कलह का कारण विभेदबुद्धि तथा विषमदर्शिता है। भगवद्गीता में कहा गया है-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (5/18)

अर्थात् पण्डितजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शीहोते हैं। इस प्रकार की समदर्शिता द्वारा ही वैयक्तिक एवं वैश्विकशांति सम्भव है। भगवद्गीता प्राणिमात्र के कल्याण का चिंतन करती है जगद्गुरु श्रीकृष्ण का वचन है-

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ (11/55)

अर्थात ''हे पाण्डव (अर्जुन) जो सभी जीवित प्राणियों के प्रति निर्वैर है वह मुझे प्राप्त करता है।'' इससे यह सिद्ध होता है कि भगवद्गीता का उपदेश किसी भी सीमा से परे है, तथा 'प्राणिमात्र' का हित इसका ध्येय है। व्यक्ति तथा समाज में अशांति, हिंसा व संघर्ष पैदा करने वाले अज्ञानजनित अवगुणों को गीता में 'आसुरी संपदा'' नाम से अभिहित किया गया है। इस आसुरी संपदा का विनाश करके 'दैवीय संपदा' युक्त व्यक्तियों के समाज का निर्माण गीता ज्ञान

का ध्येय है। 'दैवीय सम्पद' के लक्षण बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है-

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ (16/2-3)

अर्थात् अहिंसा, सत्यता, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निंदा में अरुचि (अपैशुन), दया, लोभ से मुक्ति, भद्रता, लज्जा, संकल्प, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, ईर्ष्या से मुक्ति, सम्मान की आशा न होना (नातिमानिता) ये सारे दिव्य गुण है, जो दैवी प्रकृति से सम्पन्न देवतुल्य पुरूषों में पाये जाते हैं। आसुरी सम्पदा वे अवगुण, अशक्तताएँ व दोष हैं जिनसे व्यक्ति के चित्त में तथा समाज में तनाव, असंतुलन, अशांति तथा विक्षोभ उत्पन्न होते हैं। आसुरी सम्पदा युक्त व्यक्ति के लक्षण बताते हुये श्री भगवान ने गीता में कहा है –

दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारूश्यमेवच।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम॥ (16/4)

अर्थात् - हे अर्जुन पाखण्ड, घमण्ड और अहंकार, वासना में बाधा उत्पन्न होने पर क्रोध, निष्ठुर भाव, कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में ज्ञान शून्यता, 'आसुरीसम्पदा' युक्त मनुष्य के लक्षण हैं। वर्तमान समय में व्यक्ति के चित्त एवं वाह्य जगत में व्याप्त कुसंस्कारों एवं अशांति का कारण है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली द्वारा आसुरी सम्पदा पर अंकुश नहीं लगा पा रहे हैं। वास्तव में आधुनिक शिक्षा व्यवस्था स्वयं आसुरी सम्पदा सम्पन्न व्यक्तियों व विचारों से प्रेरित व प्रभावित है।

निष्कर्ष

भगवद्गीता में निहित शांति शिक्षा के इस सूक्ष्म विहंगावलोकन से यह स्पष्ट है कि शांति का अर्थ केवल अहिंसा का अभाव नहीं है अपितु व्यापक अर्थ में शांति का अर्थ है मन की आनन्दमय, संतोषयुक्त, आप्तकाम स्थिति। व्यक्तियें की इसी शांतिपूर्ण मनःस्थिति का सुपरिणाम शांत व समरस समाज है। राष्ट्रीयशैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा जारी 'शांति के लिये शिक्षा' - राष्ट्रीय फोकस समूह का आधारपत्र (2010) में कहा गया है (8) कि ''शांति के बीज के रूप में आंतरिक शांति की पहचान की गई है, साथ ही सावधान किया गया है कि आंतरिक शांति को पलायनवाद और पाखण्डपूर्ण स्वार्थ समझने की गलती न करें।'' इस आधार पत्र में 'शांति के लिये शिक्षा' की विषय वस्तु के संदर्भ में कहा गया है कि 'द्वंदों के शांतिपूर्ण निपटारे के कौशलों को बढ़ावा मिले', 'विद्यार्थी भारतीय इतिहास, दर्शन और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में शांति की संस्कृति को देख पाने में समर्थ बन सकें तथा 'जीवन शैली सम्बन्धी एक आन्दोलन के रूप में शांति' पर बल दिया जाय। इन तीनों ही महत्त्वपूर्ण कसौटियों पर भगवद्गीता के उपदेश खरे उतरते हैं। समाज में 'दैवीयसम्पदा' की स्थापना शिक्षा का ध्येय होना चाहिये जब कि वर्तमान समय में जिसे शिक्षा कहा जा रहा है वह प्रतिस्पर्धा, कामना, आसक्ति, लोभ को बढ़ाने वाली है तथा नीतिषास्त्र से नहीं अपितु अर्थषास्त्र से प्रेरित है। समाज में देवत्व का प्राकट्य कोई घटना नहीं है बल्कि एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम सद्विचारों को ग्रहण करके संस्कारों का शोधन करना होगा और तदनुरूप कर्त्तव्यकर्म के मार्ग पर व्यक्ति और समाज को चलना होगा। श्रीमद्भगवदगीता 'दैवीयसम्पद' युक्त ऋषियों की शाश्वत विचारधारा का मूर्तिमान अक्षर ब्रह्मस्वरूप है। अर्थ एवं कामनायें मानव अस्तित्व के साथ अपरिहार्य है किन्तु इनका उपयोग एवं भोग इस भाव से होना चाहिये कि चित्त में समत्व एवं समाज में संवेदना बढ़े। यह तभी सम्भव है जब हम अपने आप को एवं आने वाली पीढ़ियों को गीता ज्ञान के आलोक में देवत्व युक्त बनाएं। भारतीय आर्ष ज्ञान का सार रूप यह ग्रंथ वैयक्तिक एवं वैश्विक शांति व समरसता हेतु आज भी प्रासंगिक व उपादेय है। भगवद्गीता किसी भी विश्वास, मत, विचारधारा या आस्था का निषेध नहीं करती तथा सभी प्रकार की आस्थाओं का सम्मान करती है। यह मन एवं उसके संकल्पों के प्रबन्धन का शास्त्र है

जिसके मार्गदर्शन में हम अपने विचारों को क्रमशः तमोगुण से परिष्कृत करते हुये सतोगुणी बना सकते हैं तथा आन्तरिक शांति प्राप्त कर सकते हैं। भगवद्गीता के अनुसार निष्कामता, निर्वैरता व स्थितप्रज्ञता के माध्यम से शांति लाभ ही वास्तविक ज्ञान है तथा यह ज्ञानोपलब्धि ही शिक्षा का उद्देश्य एवं अर्थ है। भगवद्गीता में अशांति व संघर्ष के कारण तथा निवारण दोनों का मनोवैज्ञानिक तथा व्यवहारिक विश्लेषण किया गया है। यह मानवीय दुश्चिंताओं के निवारण का कालजयी ग्रंथ है जिसके आलोक में हम आधुनिक शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं का शमन कर सकते हैं। भगवद्गीता में शांति की शिक्षा समाहित है आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था को इसके उपदेशो अनुरूप ढालकर एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था निर्मित करें जो 'शांति के लिये हो तथा शिक्षाशब्द को सार्थक कर सके।

संदर्भ-सूची

1. अपूर्वानन्द,एस. श्रीमद्भगवद्गीता, नागपुर , राम कृष्ण मठ, घन्तोली (2015) । [Apurvanand, S. SrimadBhagavadgita, Nagpur, Ram Krishna Math, Dhantoli (2015)]

2. अरबिन्दो, एस०, दि डिवाइन टीचर , एससे ऑन गीता , पाण्डिचेरी, श्री अरबिन्दो आश्रम प्रेस (1995) । [Aurobindo, S. , The Divine Teacher, Essay on Gita, Pondicherry, Sri Aurobindo Ashram Press (1995)]

3. चिन्मयानन्द, एस०, मानव निर्माण कला (श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रवचन), मुंबई, सेंट्रल चिन्मय मिशन ट्रस्ट (2010) । [Chinmayanand, S., Man-making Art (Discourse on Shrimadbhavadgita), Mumbai, Central ChinmayaMission Trust (2010)]

4. पाठक, एन०, भगवद्गीता-आधुनिक दृष्टि, पुणे, अमेय प्रकाशन (2005) । [Pathak, N., Bhagavad Gita - Adhunikdrishti, Pune, AmeyaPrakashan (2005)]

5. राधाकृष्णन, एस०, भगवद्गीता, दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा0लि0 (2001) । [Radhakrishnan, S. ,Bhagwad Gita, Delhi, Hind Pocket Books Pvt. Ltd. (2001)]

6. विवेकानन्द, एस०, भगवान श्री कृष्ण और भगवद्गीता , नागपुर, राम कृष्ण मठ, घन्तोली (2015) । [Vivekananda, S., BhagwanShri Krishna and Bhagavad Gita, Nagpur, Ram Krishna Math, Dhantoli (2015)]

7. विनोबा, स्थितप्रज्ञ-दर्शन, वाराणसी, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन (2014) । [Vinoba, Sthitpragya-Darshan, Varanasi, SarvaSevaSangh-Prakashan (2014)]

8. शांति के लिये शिक्षा , राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र ,नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद , (2010) । [Shanti keliyeshiksha, Rastriya Focus samuhkaAdharPatra, New Delhi, N.C.E.R.T.,(2010)]